भारत के वर्तमान सामाजिक विधायी परिप्रेक्ष्य में मृत्युदंड का विश्लेषणात्मक अध्ययन

UGC Approved
Section 2(f) & 12B

आई. आई. एम. टी. विश्वविद्यालय , मेरठ की
पीएच.डी. उपाधि की आंशिक पूर्ति हेतु प्रस्तुत
शोध प्रबंध की रूपरेखा

2023

शोध निर्देशक
डॉ प्रदीप कुमार सिंह

शोधार्थी
पारूल गुप्ता

आई. आई. एम. टी. विश्वविद्यालय , गंगानगर, मेरठ

प्रस्तावना

भारत एक सामाजिक–कल्याणकारी देश होने के साथ–साथ एक विकासशील देश भी है। वर्तमान में भारतवर्ष विष्व में जनसंख्या की दृष्टि से प्रथम स्थान पर है। वर्तमान परिपेक्ष में भारत में लगातार समाजिक, आर्थिक व षरीर व सम्पत्ति सम्बन्धित अपराधों में भी वृद्धि हो रही है। भारत में अपराधों को रोकने व नियंत्रित करने के लिए कई कानून बनाये गये हैं। जैसे भारतीय दंड संहिता 1860, जो कि नये अधिनियम भारतीय न्याय संहिता 2023 के रूप में लागू होने वाली है, स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985, आयुधानियम 1959, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012, सती आयोग (रोकथाम) अधिनियम, 1987, वायु सेना अधिनियम, 1950, नौसेना अधिनियम 1957, सेना अधिनियम 1950 इत्यादि के विभिन्न प्रावधानों में मृत्युदंड को दंड के रूप में निर्धारित किया गया है। दंड का के उद्देश्य एक समान अपराध की घटना को कारित होने से रोकना और अन्य व्यक्तियों को अपराधों में लिप्त होने से रोकना है।

भारतीय विधिक व्यवस्था में मृत्युदंड का अनुप्रयोग कई सिद्धांतों, व्याख्याओं और तर्कों, जैसे वैधानिक व्याख्या, संवैधानिक मुद्दे, न्यायिक व्याख्या, मानवाधिकार, और सामाजिक दृ ष्टिकोण, के अधीन है। मृत्युदंड का प्रावधान दंड के निरोधात्मक सिद्धांत और दंड के प्रतिरोधात्मक सिद्धांत के रूप में समझा जा सकता है। विधिक व्यवस्था में मृत्युदंड का उद्देश्य समान अपराध की अन्य घटना को रोकना और अन्य व्यक्तियों को अपराध में शामिल होने से रोकना है।

सामान्य विधिक व्यवस्था में दण्ड की मात्रा व उसका निर्धारण घटित अपराध की गम्भीरता व उसके कारण समाज में उत्पन्न होने वाले क्षोभ व सम्भावित संकट पर निर्भर करती है। इसलिए मृत्युदण्ड ऐसे जघन्य अपराधों के लिए ही दिया जाना उचित है जो समाज के लिए गम्भीर संकट उत्पन्न करते है।

समाजिक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति के एक दूसरे के प्रति कुछ अधिकार व कर्तव्य है। अर्थात एक व्यक्ति के अधिकार दूसरे व्यक्ति पर आरोपित कर्तव्य होते है और इन्ही अधिकार और कर्तव्यों के संतुलन से समाजिक सुरक्षा संभव होती है। राज्य का दायित्व है कि समाज में व्यक्तियों के आचरण को नियंत्रित करने के लिए व षांति व्यवस्था बनाये रखने के लिए कठोर कानूनों का प्रतिपादन करे। विधिशास्त्रियों ने यह स्वीकार किया है कि केवल कानून बना देने मात्र से मनुष्य का आचरण नियन्त्रित नही किया जा सकता जब तक कि कानूनों के उल्लंघन के लिए समुचित दण्ड की व्यवस्था न हो। अतः प्रायः दण्डशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि अपराधों के के निवारण के लिए दण्ड के प्रावधान रखे जाना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि दण्ड का भय ही व्यक्ति को आपराधिक आचरण से परावृत्त रखता है।

दण्ड की अनिवार्यता को प्रायः सभी विधिक व्यवस्थाओं में स्वीकार किया गया है लेकिन दण्ड की मात्रा का निश्चित स्वरूप क्या हो, इस सम्बन्ध में विधिशास्त्रियों में मतभेद है। इस विषय पर कुछ विधिशास्त्री कठोर दण्ड दिये जाने के तथा कुछ विधिशास्त्री सुधारात्मक या उपचारात्मक दण्ड दिये जाने के पक्षधर हैं। इस परिपेक्ष में प्रारम्भिक काल से लेकर मध्य–युग तक प्रायः सभी समाजों ने कठोर दण्ड की व्यवस्था अपनाई थी, ताकि दण्ड की भयंकरता की कल्पना से ही व्यक्ति अपराध करने का दुस्साहस न करे। परन्तु व्यवहारिकता में अनेक अपराधी कठोर दण्ड भुगतने के बाद भी पुनः अपराध करने से नहीं हिचकिचाते हैं। यही कारण है कि

समाज के विकास के साथ–साथ विधिशास्त्रियों का ध्यान दण्ड के अन्य सिद्धान्तों की ओर आकृष्ट हुआ और दण्ड नीति में कई उल्लेखनीय परिवर्तन हुए।[1]

मृत्युदण्ड का अर्थ व परिभाषा

''सरल भाषा में मृत्युदण्ड का अर्थ किसी अपराधी की मृत्यु कारित करने से है जो कि दण्ड स्वरूप की गई हो।''[2]

मृत्युदण्ड को अंग्रेजी में कैपीटल पनिशमेन्ट (ब्ंचपजंस च्नदपीउमदजद्ध कहते है। अंग्रेजी में इसके लिए प्रयुक्त ''कैपीटल'' शब्द लैटिन भाषा के ''कैपीटलिस'' शब्द सा आया है जिसका शाब्दिक अर्थ है ''सिर के सम्बन्ध में या सिर से सम्बन्धित'' इसके मूल में आरम्भिक रूप में दिये जाने वाले मृत्युदण्ड का स्वरूप सिर को धड से अलग कर देने की प्रक्रिया में है।

मृत्युदण्ड, किसी व्यक्ति की कानूनी तौर पर न्यायिक प्रक्रिया के फलस्वरूप किसी अपराध के परिणाम में प्राणांत का दण्ड देने को कहते है। मृत्युदण्ड या मौत की सजा जिसे कैपीटल पनिशमेन्ट या फांसी के नाम से भी जाना जाता है।

ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी[3] (1968), परिभाषित करती है कि मृत्युदंड ऐसे अपराध हैं जिनकी सजा मौत है।

रोजर हुड[4] के अनुसार, मृत्युदंड वह सजा है जिसमें कानून द्वारा निषिद्ध एक निश्चित अपराध करने वाले व्यक्ति की कानूनी हत्या शामिल है। दूसरे शब्दों में मृत्युदंड एक कानूनी प्रक्रिया है जहां किसी अपराधी को उसके द्वारा किए गए अपराध की सजा के रूप में कानून द्वारा मौत की सजा दी जाती है।

अमर सिंह के अनुसार

''किसी अपराधी को उसके गम्भीर अपराधों के आरोप में न्यायालय आदि उसके प्राण ले लेने का आदेश देता है, तो यह न्याय–व्यवस्था के अन्तर्गत मृत्युदण्ड कहलाता है।''

मृत्युदण्ड की उत्पत्ति

अपराध और दण्ड एक ही सिक्के के दो पहलू है। जहाँ अपराध है वहाँ दण्ड भी है। अपराध की उत्पत्ति के साथ ही दण्ड की उत्पत्ति होती है।[5] दण्ड सामाजिक नियन्त्रण का आधार है। दण्ड के अभाव में किसी भी समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। मानव में अनेक प्रकार की प्रवृत्तियाँ पाई जाती है। कुछ प्रवृत्तियाँ तो समाज को संगठित करती हैं, किन्तु कभी–कभी वह ऐसी प्रवृत्तियों के अधीन हो जाता है कि उसे समाज के नियमों को तोड़ना पड़ता है। समाज के कुछ नियम ऐसे होते है जिनका उल्लघन करना गम्भीर अपराध होता है। इस गम्भीर अपराध के लिए दण्ड भी गम्भीर ही होता है। अब प्रश्न यह है कि मनुष्य के लिए गम्भीर दण्ड क्या हो सकता है यह गम्भीर दण्ड कुछ इस प्रकार का होता है जिसकी क्षतिपूर्ति सम्भव नहीं होती है। मनुष्य के लिए यह सबसे बड़ा दण्ड होता है। इस दण्ड के बाद मनुष्य का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। व्यक्ति शारीरिक यातना सहकर भी जिन्दा रह सकता है,

---

[1] परांजपे डॉ० न० वि० सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन अष्टम संस्करण, 2015 पृ०सं०–5

[2] बसन्तीलाल बावेल डॉ0ः अपराधाशास्त्र ईस्टर्न बुक कम्पनी (द्वितीय संस्करण 1997), पृ0 131

[3] ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी, चौथा संस्करण, वेस्ट पब्लिशिंग कंपनी, 1968, पृ0 263

[4] रोजर हुड, कैपिटल पनिशमेंट, इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका,

[5] शर्मा डॉ0 यमुना शंकर : दण्डशास्त्र, द ईस्टर्न बुक कम्पनी लखनऊ, प्रथम संस्करण 1999, पृ0 1

आर्थिक हानि से भी जिन्दा रह सकता है, सामाजिक बहिष्कार से भी जिन्दा रह सकता है, किन्तु प्राणदण्ड ऐसा दण्ड है जिसके बाद मनुष्य का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है।

प्राणदण्ड को सबसे बड़ा दण्ड क्यों कहा जाता है। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए इस बात का पता लगाना आवश्यक है कि मनुष्य के लिए सबसे बड़ी वस्तु क्या है? सम्पत्ति, मान–सम्मान, सुख, परिजन–प्रियजन आदि की अपेक्षा मनुष्य को अपने प्राण अधिक प्यारे लगते है। अतः प्राण लेना ही उसके लिए सबसे बड़ा दण्ड होगा। प्राणदण्ड अन्तिम दण्ड होता है और उसके बाद मनुष्य का समाज से नाता ही समाप्त हो जाता है। प्राणों का भय ही मनुष्य को बुरे कार्यों को करने से रोक सकता है और इसलिए समाज प्राणदण्ड देता है।[6]

दण्ड क्यों आवश्यक है–

राज्य में कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिए अपराधियों को दण्डित करना राज्य का प्राथमिक कार्य है। सामाजिक परिवर्तनों तथा मानव ज्ञान में वृद्धि के कारण प्रश्न यह है कि क्या अपराधी को एक सामाजिक अपदूषण मानकर उसे समाज से समाप्त कर दिया जाना चाहिए या उपचारात्मक पद्धति से उसमें सुधार कर उसे पुनः अनुशासन प्रिय बना कर समाज की मुख्य धारा में जोडने का प्रयास किया जाना चाहिए।

यह निर्विवाद है कि अपराधों के निवारण व नियन्त्रण तथा समाज में शान्ति बनाये रखने के लिए दण्ड एक सशक्त साधन है जिससे अपराधियों में भय उत्पन्न होने से वे अपराधिक कृत्य से परावृत्त होते हैं, या उन्हें कारागार में रखकर समाज से पृथक किया जाता है या उनमें सुधार परिलक्षित होने पर उन्हें समाज में पुनः स्थापित किया जाता हो। दण्ड के अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपनाये जाने वाले इन विभिन्न सिद्धान्तों के अन्तर्गत अपराध और अपराधियों के प्रति अपनाई जाने वाली ऐसी दण्ड नीति का समावेश रहता है जो समाज की धाराओं और मूल्यों के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है।[7]

मृत्युदण्ड की विशेषताएँ

मृत्युदण्ड से तात्पर्य ऐसे मानव वध या हत्या से होता है जो अपराध कारित करने पर विधि की सम्यक प्रक्रिया द्वारा दण्ड स्वरूप अपराधी को दिया जाता है। इस प्रकार मृत्युदण्ड में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं–

1. इसमें अपराधी के जीवन की समाप्ति विधि द्वारा न्यायोचित ठहराई गई होती है।
2. जीवन की यह समाप्ति अपराध के दण्ड के रूप में की जाती है।
3. मृत्युदण्ड में प्रतिषोधात्मक, प्रतिरोधात्मक व निरोधात्मक सिद्धान्तो का समावेष रहता है।

मृत्युदण्ड के विभिन्न तरीके

जैसा कि हमने ऊपर देखा, मृत्युदण्ड का सीधा सा अभिप्राय है– अपराधी के प्राण ले लेना अर्थात् उसकी मृत्यु कारित कर देना। प्राचीन समय से लेकर आज तक मृत्युदण्ड के

---

[6] बघेल डॉ0 डी0एस0 : अपराध शास्त्र, ईस्टर्न बुक कम्पनी लखनऊ, प्रथम संस्करण 2014, पृ0 253

[7]परांजपे डॉ० न० वि० सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन अष्टम संस्करण, 2015 पृ०

लिए विभिन्न तरीको का प्रयोग किया जाता रहा है, जैसे फांसी लगाना, गोली मारना, जला देना, सिर काट देना, शेर के पिजड़ें में बंद कर देना, दीवार में चुन देना, विषपान करा देना, पहाड़ी से धक्का दे देना, अंग भग कर देना, गर्म सलाखों में दाग देना, खौलते तेल के कहाड़ में डाल देना, बैल के सीग से कुचलवा देना, पत्थर बांधकर पानी में फेंक देना, हाथी के पांव के नीचे कुचलवा देना आदि।

'वर्तमान समय में मृत्युदण्ड देने के पुरातन बर्बरतापूर्ण तरीकों को त्याग दिया गया है तथा आधुनिकतम तरीके अपनाए जा रहे है ताकि अपराधी को मरते समय शारीरिक यातना यथासम्भव कम हो। आधुनिक प्रचलित तरीकों में बिजली के करंट द्वारा या गोली मार कर या गैस–चेम्बर में रखकर, या फांसी पर चढ़ाकर या इन्जेक्शन देकर अपराधी को मृत्युदण्ड दिये जाने की पद्धति अपनाई जा रही है।[8] यद्यपि भारत में फाँसी द्वारा मृत्युदण्ड की सजा दी जाती है।

अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य

मृत्युदण्ड के संदर्भ में विष्व के देशों को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) प्रथम वर्ग—प्रथम वर्ग में उन राज्यों को सम्मिलित किया गया है जहाँ मृत्युदण्ड को समाप्त कर दिया गया है। ऐसे कुछ देश है—आस्ट्रेलिया, आस्ट्रिया, ब्राजील, कोलम्बिया, जर्मनी, इटली, मैक्सिको, न्यूजीलैण्ड, स्विट्रजरलैण्ड आदि

(2) द्वितीय वर्ग— द्वितीय वर्ग में उन राज्यों को सम्मिलित किया जाता है जहाँ मृत्युदण्ड की सजा है भी और नहीं भी है। इन देशों में मृत्युदण्ड को सैद्धान्तिक आधार पर स्वीकार तो किया है, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इसका प्रयोग नहीं किया जाता है। इन देशो में कुछ के नाम इस प्रकार है—बेल्जियम, लक्जेमबर्ग, वेटिकन सिटी

(3) तृतीय वर्ग– तृतीय वर्ग में दुनिया के उन राज्यों को सम्मिलित किया गया है जहाँ प्राणदण्ड की सजा को सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक रूप से स्वीकार किया जाता है ऐसे कुछ देश है– अफगानिस्तान, भारत, जापान, अमेरिका आदि

इस प्रकार स्पष्ट है कि संसार के अधिकांश देशों में प्राणदण्ड की प्रथा विद्यमान हैं। मृत्युदण्ड को एक वैश्विक मुद्दा माना जाता है। ''मृत्युदंड का उन्मूलन'' शब्द संयुक्त राष्ट्रसंघ (यूएन) में सबसे अधिक चर्चा पाने वाले विषयों में से एक है। संयुक्त राष्ट्रसंघ मानवाधिकारों की रक्षा में एक महान भूमिका निभाता है। मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा 1948 के अनुच्छेद 5 में प्रावधान है कि किसी को भी यातना या क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड नहीं दिया जाएगा। नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा (आईसीसीपीआर) 1966 के अनुच्छेद 7 में प्रावधान है कि किसी को भी यातना या क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड नहीं दिया जाएगा। नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा मृत्युदण्ड को समाप्त नहीं करती है बल्कि इसका अनुच्छेद 6 जीवन के अधिकार की गारंटी देता है

[8] पराजये डॉ0 ना0वि0 : अपराधशास्त्र, दण्ड शास्त्र एवं प्रपीड़न शास्त्र सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन (सप्तम संस्करण 2014) पृ0 275

फुरमैन बनाम जॉर्जा[9], अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट ने घोषणा की कि मृत्युदण्ड एक क्रूर और असामान्य सजा है, इसलिए यह असंवैधानिक है। ग्रेग बनाम जॉर्जा[10], में अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट ने माना कि कुछ राज्यों में नए कानूनों के तहत दी गई मौत की सजा संवैधानिक थी। ब्रिटेन में, हत्या के लिए मृत्युदंड को 1965 में 5 साल की प्रायोगिक अवधि के लिए समाप्त कर दिया गया था, तथा 1969 में इसे स्थायी रूप से समाप्त कर दिया गया था। अंगोला, जिबूती, मोजाम्बिक और नामीबिया सहित कई अफ्रीकी देशों ने मृत्युदंड को समाप्त कर दिया था।

भारत में मृत्युदण्ड का इतिहास

भारत में मृत्युदण्ड आदिकाल से प्रचलित है तथापि इसे कार्यान्वित करने के तरीकों में समयानुसार परिवर्तन होता रहता है।[11]

वेद भारत के आदि ग्रन्थ हैं और इन ग्रन्थों में भी दण्ड–व्यवस्था का उल्लेख है। प्राण लेने का अधिकार केवल ईश्वर को होता है। अतः ईश्वर ही प्राण ले सकता है। यह शाष्वत सत्य है किन्तु ईश्वर के प्रतिनिधि को प्राण लेने का पूरा अधिकार था। प्राचीन व्यवस्था में शासक ईश्वर के सच्चे प्रतिनिधि हुआ करते थे। प्राणों को अत्यन्त पवित्र होने की संज्ञा देते हुए राजद्रोह, हत्या, बलात्कार आदि गम्भीर अपराधों के लिए व्यक्ति को प्राणदण्ड देने का विघान था।[12]

प्राचीन धर्मशास्त्रों में महापतकों के लिए मृत्युदण्ड की व्यवस्था थी। महाभारत और रामायण में भी अपराधियों को वध–दण्ड दिये जाने का उल्लेख मिलता है। मनुस्मृति में दो प्रकार के प्राणदण्ड की विधियों का उल्लेख है–चित्रवध और शुद्धवध। चित्रवध में पहले अपराधी को असहाय शारीरिक यातनायें दी जाती थी और इसके बाद अपराधी को मौत के घाट उतारा जाता था। शुद्धवध में बिना किसी प्रकार की यातनायें पहुँचाए ही व्यक्ति को मौत के घाट उतार दिया जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय तीन प्रकार के ही दण्ड थे–प्राणदण्ड, शारीरिक दण्ड और आर्थिक दण्ड। भारत में मुगलों के शासनकाल में मृत्युदण्ड को अत्यन्त बर्बरतापूर्वक कार्यान्वित किया जाता था। तथापि ब्रिटिश शासन काल में ये बर्बरतापूर्ण दिल दहला देने वाले मृत्युदण्ड के तरीके त्याग दिये गये तथा केवल फांसी देने की पद्धति ही अपनाई गई। यह पद्धति आज भी विद्यमान है।

भारत में संविधान पूर्व व पष्चात मृत्युदण्ड की स्थिति

मृत्युदण्ड समाप्त करने का एक पूर्व प्रयास स्वतन्त्रता पूर्व भारत में किया गया था, जब श्री दया प्रसाद सिंह ने 1931 में भारतीय दंड संहिता सम्बन्धी अपराधों के लिए मृत्युदण्ड समाप्त करने हेतु एक विधेयक पुनः स्थापित करने का प्रयास किया था। तथापि वह विधेयक विफल कर दिया गया।[13]लगभग उसी समय, मार्च, 1931 में ब्रिटिश सरकार द्वारा भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरू को फांसी दिए जाने के पश्चात् कांग्रेस ने कराची सत्र में एक संकल्प, जिसमें मृत्युदण्ड की समाप्ति के लिए मांग थी, प्रस्तावित किया।

---

[9] 408 यूएस 238, 1972

[10] 428 यूएस 153, 1976

[11] डॉ० न० वि० परांजपे : अपराधशास्त्र, दण्ड शास्त्र एवं प्रपीड़न शास्त्र (सप्तम संस्करण 2014) पृ० 278

[12] डॉ० डी० एस० बघेल : अपराध शास्त्र (सप्तम संस्करण 2014) पृ० 255

[13] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 12

1947 और 1949 के बीच भारत की संविधान सभा के विचार–विमर्शों में मृत्युदंड की न्यायाधीश–केंद्रित प्रकृति, उसको देने में मनमानेपन, निर्धनता में रह रहे व्यक्तियों पर उसके विभेदकारी प्रभाव और गलती की सम्भावना के बारे में भी प्रश्न उठाए गए।

वर्तमान में भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 53 में मृत्युदंड का प्रावधान है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 368 उच्च न्यायालय को मृत्युदंड देने का अधिकार देती है। भारत में, मृत्युदंड का निष्पादन ''दुर्लभतम मामलों में से दुर्लभतम'' सिद्धांत पर आधारित है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ''दुर्लभ से दुर्लभतम'' मामलों की पहचान करने के लिए कई दिशानिर्देश बनाए गए हैं जिनमें मृत्युदंड दिया जा सकता है। भारत में मौत की सजा पर अभी भी चर्चा जारी है. कुछ लोग मानवाधिकारों से जुड़े मुद्दों की ओर इशारा करते हुए इसे निरस्त करने के लिए तर्क देते हैं। इन विधिषास्त्रियों का मत है कि गलत काम करने वालों को अपना जीवन सुधारने का दूसरा मौका दिया जाना चाहिए। कभी–कभी दोषपूर्ण न्याय प्रणाली के कारण निर्दोष लोग मारे जाते हैं। दूसरी ओर, मृत्युदंड का समर्थन करने वालों का तर्क है कि यह जघन्य मामलों के लिए आवश्यक है और एक निवारक के रूप में कार्य करता है। जिस अपराधी ने इतना जघन्य अपराध किया है उसे जीने का अधिकार नहीं है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा का अधिकार देता है। साथ ही भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 कानून के समक्ष समानता और कानूनों के समान संरक्षण का अधिकार देता है। भारतीय संविधान नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करने में एक महान भूमिका निभाता है, इसलिए प्रत्येक न्यायालय द्वारा निष्पक्ष सुनवाई के उच्च मानकों अपनाया जाता है और पालन की जाने वाली प्रक्रियाएं न्यायसंगत, निष्पक्ष और उचित होती हैं। इसके अलावा, आपराधिक न्याय प्रणाली में कई न्यायिक मामलों में मानवाधिकारों के महत्व की घोषणा की गई है।

मृत्युदण्ड का प्रभाव

(क) प्रतिशेधात्मक प्रभाव

सदियों से मृत्युदण्ड को प्रतिशोधात्मक न्याय का साधन माना जाता रहा है। इसे इस आधार पर उचित माना जाता है कि जो व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की जान लेने में हिचकिचाहट अनुभव नहीं करता उसकी जान लेना न्यायोचित है।[14] इस प्रकार मृत्युदण्ड में प्रतिरोध की भावना परोक्ष रूप से अन्तर्निहित रहती है। वैधानिक प्रतिशोध सामाजिक एकता को सुदृढ़ बनाता है तथा उसे विधि के उल्लंघनकारियों से संरक्षण देता है।

(ख) निरोधात्मक प्रभाव

मृत्युदण्ड के कारण अपराधियों को पूर्णतः समाज से पृथक किया जाता है। अपराध विहीन समाज के लिए सबसे अच्छा उपाय यही है कि अपराधियों को मृत्युदण्ड देकर हमेषा के लिए समाज से खत्म कर दिया जाए। परन्तु आलोचकों का मानना है कि सभी अपराधियों को मृत्युदण्ड नहीं दिया जा सकता। किन्तु गम्भीर व जघन्य अपराधियों को मृत्युदण्ड अवश्य दिया जाना चाहिए, ताकि ऐसे अपराधियों को समाज से पृथक किया जा सके।

(ग) प्रतिरोधात्मक प्रभाव

[14]डेविड ड्रेसलर : रीडिंग्ज इन क्रिमिनोलॉजी एण्ड पेनोलॉजी (द्वितीय संस्करण) पृ०–501

मृत्युदण्ड का भय सम्भवतः व्यक्ति पर सर्वाधिक प्रभाव डालता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्राणों से अधिक प्रिय और कोई वस्तु नहीं होती। यही कारण है, कि पुरातन समय से आज तक लगभग सभी देशों में मृत्युदण्ड प्रचलित है।

मृत्यु दंड पर न्यायिक दृष्टिकोण

भारत उन 78 प्रतिधारणवादी देशों में से एक है, जिन्होंने इस आधार पर मृत्युदंड को बरकरार रखा है कि मृत्युदण्ड केवल 'दुर्लभतम मामलों' में और 'विशेष कारणों' के लिए ही दिया जाएगा। हालांकि 'दुर्लभतम मामला' या 'विशेष कारणों' का गठन कब और कैसे होता है, इसका निष्चित मापदण्ड विधायिका या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नहीं दिया गया है बल्कि यह अवधारणा केवल तथ्यों पर निर्भर करती है। इसके विपरीत उन्मूलनवादियों द्वारा यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान रूप में मृत्युदण्ड की व्यवस्था व्यक्ति के जीवन जीने के अधिकार का उल्लंघन करती है।

भारत में मृत्युदण्ड की संवैधानिक वैधता को कई मामलों में समय–समय पर चुनौती दी गई थी।

जगमोहन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ।ण्प्ण्त्ण 1973ए ैण्ब 947 के मामले में उच्चतक न्यायालय की पाँच जजों की बेंच ने सर्वसम्मति से मौत की सजा की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखा, जिसमें अभिनिर्धारित किया गया, कि मृत्युदंड भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 का उल्लंघन नहीं करता है।

राजेंद्र प्रसाद बनाम यूपी राज्य, ।ण्प्ण्त्ण 1979ए ैण्ब मे न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने जोर देकर कहा कि मृत्युदंड देने के लिए दो मार्गदर्षक सि़द्धान्त अपनाये जाने जरूरी हैंः–

क. किसी मामले में मृत्युदंड देने के लिए विशेष कारण दर्ज किया जाना चाहिए।

ख. असाधारण परिस्थितियों में ही मृत्युदंड दिया जाना चाहिए।

बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, ।ण्प्ण्त्ण 1980ए ैण्ब 898 मे मृत्युदण्ड के प्रश्न पर फिर से विचार किया गया, जिसमें 4 से 1 (न्यायमूर्ति श्री भगवती असहमति) के बहुमत से उच्चतम न्यायालय की पांच जजों की बेंच ने विचार व्यक्त किया कि हत्या जैसे जघन्य अपराध के लिए वैकल्पिक सजा के रूप में मौत की सजा अनुचित नहीं है और इसलिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 का उल्लंघन नहीं है।

माछी सिंह बनाम पंजाब राज्य, ।ण्प्ण्त्ण 1983ए ैण्ब 957 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने उन परिस्थितियों की व्यापक रूपरेखा निर्धारित की जब मौत की सजा दी जानी चाहिए। न्यायालय की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति ठक्कर ने कहा कि पांच श्रेणियों के मामलों को दुर्लभ से दुर्लभतम मामलों के रूप में माना जा सकता है जो अत्यधिक दंड के पात्र हैं। वे हैंः

1. जब हत्या बेहद क्रूर तरीके से की जाती है जिससे समाज में तीव्र और अत्यधिक आक्रोश पैदा हो।
2. जब हत्या किसी ऐसे उद्देष्य के लिए की जाती है जो चरित्रहीनता और नीचता को बढ़ावा देता है।
3. जब अपराध असामाजिक या सामाजिक रूप से घृणित प्रकृति का हो।

4. अपराध की भयावहता – बहुत अधिक अनुपात के अपराध।
5. हत्या के शिकार व्यक्ति का व्यक्तित्व।

दीना बनाम यूनियन, (1983) 4ैह 645, मे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 354(5) की संवैधानिक वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि इस धारा द्वारा निर्धारित रस्सी द्वारा बर्बर, अमानवीय और अपमानजनक है और अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है। अदालत ने अनुच्छेद 21 के अर्थ के तहत धारा 354(5) को उचित, न्यायसंगत और उचित प्रक्रिया के रूप में माना।

शेर सिंह बनाम पंजाब राज्य ।ण्ण्त्ण 1983ए ैण्ह 365, मे सर्वोच्च न्यायालय ने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि बचन सिंह के मामले में मौत की सजा संवैधानिक रूप से वैध और शासन की बाधाओं के भीतर स्वीकार्य है। इसे देश के कानून के तौर पर स्वीकार करना होगा।

त्रिवेणीबेन बनाम गुजरात राज्य, ।ण्ण्त्ण 1989ए ैण्ह 142, मे सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि भारतीय संविधान मृत्युदंड पर रोक नहीं लगाता है।

मिट्ठू बनाम पंजाब राज्य, (1983) 2ैह 277, में भारतीय दंड सहिंता की धारा 303 को भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और 14 के उल्लंघन के रूप में माना गया था, क्योंकि इस धारा के तहत अपराध केवल मृत्युदंड के साथ दंडनीय था और न्यायपालिका को शक्ति नहीं देता था कि वह अपने विवेक का प्रयोग करें और इस प्रकार एक अनुचित, अन्यायपूर्ण और अनुचित प्रक्रिया के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति को उसके जीवन से वंचित कर दिया जाए।

मृत्यु दण्ड के लिए फाँसी के स्थान पर किसी अन्य व्यवस्था के लिए उच्चतम न्यायालय के समक्ष ऋषि मल्हौत्रा द्वारा वर्ष 2017 में दाखिल रिट याचिका पर मुख्य न्यायाधीश डी0 वाई0 चन्द्रचूड़ की अध्यक्षता वाली बैंच ने केन्द्र सरकार से फाँसी के तरीके में परिवर्तन करने के सम्बन्ध में अपना पक्ष रखने हेतु सुनवाई की है ताकि मौत की सजा का क्रियान्वयन गरिमापूर्ण किया जा सके।

अध्ययन के उद्देश्यः–

अनुसंधान सामान्यता एक निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए किया जाता है अध्ययन से तैयार किए गए स्थापित सामान्यीकरणों में ज्ञान के कोष विद्यमान है जो मौजूदा स्वीकृत सिद्धान्त में विश्वसनीयता जोड़ सकता है या ज्ञान के स्वीकृत निकाय में कुछ संशोधन ला सकता है। सत्य की खोज किसी भी शोध का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य है। शोधकर्त्ता अपने द्वारा किए गए शोध से ज्ञान प्राप्त करता है। यह ज्ञान प्राप्त करने या किसी विशेष वस्तु या वस्तु के बारे में सच्चाई स्थापित करने का स्त्रोत है। अनुसंधान का एक उद्देश्य किसी घटना से परिचित होना या उसमें नई अंतदृष्टि प्राप्त करना है।

1. शोध का मुख्य लक्ष्य मृत्युदण्ड के वर्तमान सामाजिक–विधायी परिप्रेक्ष्य का अध्ययन करना।
2. मृत्युदण्ड से सम्बन्धित भारतीय विधि के अन्तर्गत मृत्युदण्ड देने की विधिक व संवैधानिक व्यवस्था के विधायी आशय का अध्ययन करना ।
3. मृत्युदण्ड के विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन करना, जिसमें एक ओर अपराधी को वापिसी का कोई मौका नहीं है वही दूसरी ओर मृत्युदण्ड से जघन्य अपराध रुकते हैं ।

अनुसंधान का विस्तारः—

मृत्युदंड के मुद्दे पर भारत का दृष्टिकोण अभी भी बहुत विवादास्पद है। विवाद सिर्फ सजा की वैधता को लेकर नहीं है बल्कि इसमें सामाजिक और विधिक दृष्टिकोण भी शामिल हैं। यहां अध्ययन करके यह पता लगाना है कि मृत्युदंड मानवाधिकारों का वास्तव में उल्लंघन करता है या नहीं। यदि कानूनी प्रश्न को एक तरफ रख दिया जाए तो इस विषय के दो पहलू हैं। पहला पहलू समाज और जनभावनाओं की सुरक्षा है। जिसका प्रतिवाद यह है कि यह दृष्टिकोण जैसे को तैसा के सिद्धांत को बढ़ावा देता है जो भारत जैसे कल्याणकारी राज्य में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। वही दूसरी ओर अभ्यस्त व जघन्य अपराधी को दूसरा मौका देकर, हम उन्हें हमें गोली मारने के लिए एक गोली दे रहे होंगे, सिर्फ इसलिए कि वे प्राथमिक समय चूक गए।

अनुसंधान की क्रिया विधिः—

इस शोध समस्या के उद्देश्य के लिए शोधकर्त्ता ने सैद्धान्तिक अनुसंधान पद्धति का चयन किया है, शोधार्थिनी का मानना है कि सिद्धान्त विधि उचित तरीके से अनुसंधान का आयोजन करती है। शोधकर्त्ता ने सम्बन्धित कानूनों का अध्ययन किया है। पुस्तकों में उपलब्ध साहित्य, मामलों, कार्यप्रणाली, घटना, समस्याओं इत्यादि के बारे में नए ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित जाँच की है। शोधकर्त्ता ने शोध के लिए निम्नलिखित स्त्रोतों का उपयोग किया है—विधि पुस्तक, न्यायिक निर्णय, शोध पत्र, समाचार पत्र, लॉ जर्नल्स, आर्टिकल, इत्यादि

परिकल्पना

इस प्रकार वर्तमान शोध के परिकल्पना निम्न है—

1. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मृत्युदण्ड अपराधों के उन्मूलन के लिए संवैधानिक व विधिक आवश्यकता है।
2. समाजिक सुरक्षा हेतु मृत्युदंड की विधिक व्यवस्था करना विधायिका का आष्य है।
3. मृत्युदण्ड से सम्बन्धित भारतीय कानून प्रतिरोधात्मक व निरोधात्मक सिद्धान्तों की पूर्ती करते है।

अध्ययन की योजनाः—

उक्त शोध को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय—परिचय

द्वितीय अध्याय—मृत्युदण्ड के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य

तृतीय अध्याय–भारत में मृत्युदण्ड से सम्बन्धित संविधानिक एवं वैधानिक पहलू
चतुर्थ अध्याय–मृत्युदण्ड को यथावत् बनाए रखने का औचित्य
पंचम् अध्याय–मृत्युदण्ड के सम्बन्ध के प्रति न्यायिक दृष्टिकोण
षष्टम् अध्याय–मृत्युदण्ड से सम्बधित विधियों का तुलनात्मक अध्ययन
सप्तम् अध्याय–निष्कर्ष एवं सुझाव

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. किताबं–

- *डॉ0 यमुना शंकर शर्मा : दण्ड शास्त्र, प्रथम संस्करण 1999, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ*
- *डॉ0 डोसो बहोल : अपराध शास्त्र, सप्तम संस्करण 2014*
- *डॉ0 बसंती लाल बावेल : अपराध शास्त्र, द्वितीय संस्करण 1997*
- *डॉ0 ना0वि0 पराजये : अपराध शास्त्र, दण्ड शास्त्र एवं प्रतीड़न शास्त्र सप्तम संस्करण 2014*
- *रोजर हुड़ : केरोलिस होएल मृत्युदण्ड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, 5वां संस्करण 2015*
- *डॉ0 ना0वि0 पराजये : अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र, सप्तम संस्करण, 2014*
- *डॉ0 डी0एस0 बहोल : अपराध शास्त्र, सप्तम संस्करण 2014*
- *एन्ड्रियु एशवर्थ : दंडादेश देना और आपराधिक न्याय, 7 चौथा संस्करण, 2005*
- *जोन यार्लो : मृत्युदण्ड के विरूद्ध 262, पहला संस्करण 2008, अवलोकन–18/5/2016*
- *डॉ0 यमुना शंकर शर्मा : दण्डशास्त्र, प्रथम संस्करण, 1999 ईस्टर्न बुक कम्पनी लखनऊ*
- *डॉ0 डी0एस0 बघेल : अपराध शास्त्र, सप्तम् संस्करण 2014*
- *डॉ0 बसन्तीलाल बावेल : अपराधाशास्त्र, द्वितीय संस्करण, 1997*

2. सम्बन्धित विधियाँ और रिपोर्ट

- *भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 120 (बी)*
- *दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा–2*
- *दिल्ली पीड़ित प्रतिकर स्कीम 2011*
- *भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट 1967*
- *वर्मा समिति रिपोर्ट 2013 पैरा 246, 2014*
- *एमनेस्टी इंटरनेशनल, 2014,* SC.T. 50/00/2015
- *एनेक्सचर, एमनेस्टी इंटरनेशनल, 2014*
- *भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 1*
- *भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 1161–1162*
- *वर्मा समिति रिपोर्ट, 2013, पैरा 246*
- *अनुच्छेद 6(2), आईसीसीपीआर, 'ऐसे देशों ने, जिन्होंने मृत्युदंड को समाप्त नहीं किया है, मृत्युदंडादेश को अपराध किए जाने के समय पर प्रवृत्त विधि के अनुसार और वर्तमान प्रसंविदा के उपबंधों के और जनसंहार के अपराध के निवारण ओर दंड संबंधी प्रसंविदा के विरोध में नहीं, अत्यधिक गंभीर अपराधों के लिए अधिरोपित किया जा सकता हे। इस दंड को किसी सक्षम न्यायालय द्वारा दिए गए अंतिम निर्णय के अनुसरण में दिया जा सकता है।''*

- *ICCPR अनुच्छेद–6(2)*

3. जनरल–

- *मानव अधिकार समिति जनरल कमेंट नं0 6, 1982 पैरा–6*
- *अपराध शास्त्र और पुलिस विज्ञान, 539, 542 (1970)*
- *विधि और अपराध का जनरल, 765, 766 (2010)*
- *राउमिन्सन : एनशियेर मोनार्कीज, ग्रन्थ 1*
- *महाभारत शन्तिपर्व अध्याय 267*
- *युग मोहित चौधरी, हैगिंग आन श्योरीज, फ्रंटलाइन, 7 सितम्बर 2012, 29–32*

4. न्यूज पेपर–

- *INS मृत्युदण्ड सी0पी0आई नेता डी राजा, शैर सरकारी सदस्य ने संकल्प प्रस्तावित किया इकोनोमिक टाइम्स, 31, जूलाई, 2015*
- *इकोनोमिक टाइम्स, 7 अगस्त 2015*
- *B.C.C. न्यूज : एशिया पाकिस्तान ने अपीलों के बावजूद शफावत हुसैन को फांसी दी*
- *युग मोहित चौधरी, हैंगिंग ऑन थ्योरीज, फ्रंटलाइन, 7 सितंबर 2012, 29–32*
- *सईद सज्जाद अली, त्रिपुरा ने मृत्युदंड के विरूद्ध संकल्प पारित किया, दि हिन्दू, 7 अगस्त, 2015*
- *आईएएनएस, मृत्युदंड : सीपीआई नेता डी राजा, गैर सरकारी सदस्य ने संकल्प प्रस्तावित किया, इकोनोमिक टाइम्स, 31 जुलाई, 2015*
- *ईटी ब्यूरो, मृत्युदंड समाप्त करने की मांग की, डीएमके की कानीमोझी ने गैर सरकारी विधेयक का प्रस्ताव रखना चाहा, इकोनोमिक टाइम्स, 7 अगस्त, 2015*
- *इम्युनेल केंट, नैतिकता के सूक्ष्म विचार 141–142 (एम0जे0 ग्रेगर ट्रांस, 1996)*
- *एच0एल0ए0 हर्ट, दण्ड और उत्तरदायित्व 164–165, 1968*
- *अर्नेस्ट हांग, दि अल्टीमेट पनिशमेंट– एडिफेस, 99 हावर्ड ला रिविव्यु 1662, 1666 (1986)*
- *पीटर पेसेल एण्ड जॉन टेलर, मृत्युदण्ड का भयपरतिकारी प्रभाव : एक दूसरा दृष्टिकोण 67 ए0एम0 ई0सी0ओ0एस0, आर0इ0वी0 445, 1977*
- *मेरी एलेन गेल, प्रतिरोध, दण्ड और मृत्यु 18 यू0एस0 डेविस एल0 आरईवी, 973, 499 1000 (1985)*
- *रोजर हुड़, केरोलिन होएल, मृत्युदंडः एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, 5 (5वां संस्करण 2015)*
- *अमर उजाला*
- *दैनिक जागरण*

5. वेब साइट

- *http://consusindia.gov.in/data Products/Library/Provisional Population Total link pdf.*
- *http://consuindia.gov.in poll-pro-resident data film/mp/07 Lieracy pdf.*
- *http://www.bailil org/uk/cases/uk/pc/1993/1.html 16-04-2016*
- *www.achpr.org/press/2014/10/d277 18-4-2016*
- *http://parliamentofindia.nic.in/is debates/vol 18p/15 b-htm.*
- *http://www.amninorg/documents/ASA 20/007/2008/en*